तुलसीदास : कवि–कर्म की उदात्त विजय गाथा

भैरव सिंह
सहायक अध्यापक
हासीमारा हिंदी हाई स्कूल, अलीपुरद्वार

शोध सारांश :
'तुलसीदास' निराला की लंबी कथात्मक कविता है। अगर आप यह जानना चाहते हैं कि कवि-कर्म किस महान उद्देश्य से परिचालित होता है, तो निराला की इस रचना को पढ़ें। अगर आप यह जानने को इच्छुक हैं कि 'कला कला के लिए या जीवन के लिए ' या कविताई कोई शौक–शगल (केवल पद, पैसा, यश प्राप्ति का माध्यम भर) की चीज है या कठोर साधना और तपस्या, तो निराला की इस कृति को पढ़ें। अगर आप एक कवि के रचनात्मक-संघर्ष और उसकी सम्पूर्ण रचना- प्रक्रिया को समझना चाहते हों, तो निराला की इस रचना का अवलोकन करें। अगर आप एक कवि की दृष्टि से मध्यकालीन भारत की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि की वास्तविकता (सामाजिक-सांस्कृतिक मूल्यों का ह्रास और फिर उसके विकास के लिए संघर्ष।) से परिचित होना चाहते हों, तो निराला की इस कृति को पढ़ें। अगर आपका मन यह जानने को उत्सुक हो रहा है कि कैसे भक्तिकाल का एक कवि, आधुनिक हिन्दी- कविता के श्रेष्ठ व अद्वितीय कवि (निराला) का सर्वप्रिय व आदर्श कवि बन बैठा, तो इस कविता को पढ़ें। अगर आप कला की गरिमा के साथ सांस्कृतिक चिंतन की गहराई की थाह लेना चाहते हों और साथ ही यह की कैसे एक छायावादी कवि अपनी प्रतिभा और कठिन साध्य परिश्रम के बलबूते अपनी रचना और पाठक को रोमांटिक धरातल से क्लासिक धरातल पर पहुंचा देता है तो निराला की इस महत्वपूर्ण रचना को अवश्य पढ़ें। मध्यकाल के महान लोकवादी कवि 'तुलसीदास' को केंद्र में रखकर ही निराला ने इस कविता की रचना की है। 'तुलसीदास' ही इस कविता में काव्य-नायक हैं।तुलसी को 'हिन्दू-संस्कृति के जीर्णोधारक' के रूप में दिखाया गया है। जो काम निराला ने 'राम की शक्तिपूजा' में राम से 'शक्ति की मौलिक कल्पना' की अवधारणा को साकार करके करवाया, वही काम 'तुलसीदास' में तुलसी की रचनात्मक शक्ति (लेखनी) के माध्यम से करवाते हैं।

बीज शब्द :
मध्यकाल, भारतीय संस्कृति, इस्लामिक संस्कृति, पतन, उत्थान, तुलसीदास, कवि-कर्म, रत्नावली, काम, प्रेम, प्रकृति, कला, जागरण आदि।

"निराला के लिए पूर्ण ज्ञान का अधिष्ठान है भारत, हृदय की सम्पूर्ण श्रद्धा और भक्ति का आधार है भारत, जीवन के समस्त कर्मों का लक्ष्य है भारत। निराला की एक प्रिय कल्पना थी, भारत अपने शब्दार्थ से ही ज्ञानमय है। भा अर्थात प्रकाश; भारत अर्थात प्रकाशवान। 'तुलसीदास' में इसी ज्ञानमय भारत का सूर्यास्त होता है। तुलसीदास की काव्य साधना इसी भारत का अपार भ्रम हरने के लिए है।"और "तुलसीदास कवि हैं; उनका कवि कर्म किसी भी शस्त्रधारी योद्धा के कर्म से कम वीरता पूर्ण नहीं है। तुलसीदास ने अपना कवि कर्म तब आरंभ किया जब देश के समस्त योद्धाओं के अस्त्र-शस्त्र व्यर्थ हो गए थे। सबकुछ व्यर्थ हो जाए, काव्य साधना कभी व्यर्थ नहीं होती। जो वीर थे, उन्होनें वीरगति प्राप्त की : जो कायर थे, वे नई सत्ता के स्तम्भ बने। देश के उद्धार का बीड़ा किसने उठाया कवि ने। आसक्ति, कुतर्क और विरोधी संस्कारों से जूझते हुए, रत्नावली की सहायता से , तुलसीदास अपने लक्ष्य की ओर बढ़ते हैं।" [1]

डॉ. रामविलास शर्मा के इन दोनों वक्तव्यों को मिलाकर पढ़ने पर हमें निराला की रचना 'तुलसीदास' के काव्य-मर्म तक पहुँचने में आसानी होती है। अगर आप यह जानना चाहते हों कि कवि-कर्म किस महान उद्देश्य से परिचालित होता है, तो निराला की इस रचना को पढ़ें। अगर आप यह जानने को इच्छुक हैं कि 'कला कला के लिए या जीवन के लिए' या कविताई कोई शौक–शगल (केवल पद, पैसा, यश प्राप्ति का माध्यम भर) की चीज है या कठोर साधना और तपस्या, तो निराला की इस कृति को पढ़ें। अगर आप एक कवि के रचनात्मक-संघर्ष और उसकी सम्पूर्ण रचना- प्रक्रिया को समझना चाहते हों, तो निराला की इस रचना का अवलोकन करें। अगर आप एक कवि की दृष्टि से मध्यकालीन भारत की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि की वास्तविकता (सामाजिक-सांस्कृतिक मूल्यों का ह्रास और फिर उसके विकास के लिए संघर्ष।) से परिचित होना चाहते हों, तो निराला की इस कृति को पढ़ें। अगर आपका मन यह जानने को उत्सुक हो रहा है कि कैसे भक्तिकाल का एक कवि, आधुनिक हिन्दी- कविता के श्रेष्ठ व अद्वितीय कवि (निराला) का सर्वप्रिय व आदर्श कवि बन बैठा, तो इस कविता

को पढ़ें। अगर आप कला की गरिमा के साथ सांस्कृतिक चिंतन की गहराई की थाह लेना चाहते हों और साथ ही यह कि कैसे एक छायावादी कवि अपनी प्रतिभा और कठिन साध्य परिश्रम के बलबूते अपनी रचना और पाठक को रोमांटिक धरातल से क्लासिक धरातल पर पहुंचा देता है तो निराला की इस महत्वपूर्ण रचना को अवश्य पढ़ें। निःसन्देह तब हम यह समझ पायेंगे कि 'राम कि शक्ति-पूजा' की तरह 'तुलसीदास' भी निराला की एक उदात्त रचना है, जिसमें 'छायावाद की कला को चरम शिखर पर पहुंचाकर विराम दिया' गया है।

मध्यकाल के महान लोकवादी कवि 'तुलसीदास' को केंद्र में रखकर ही निराला ने इस कविता की रचना की है। 'तुलसीदास' ही इस कविता में काव्य-नायक हैं। हिन्दी साहित्य में तुलसीदास की पहचान एक 'रामभक्त कवि' के रूप में है, लेकिन चाहे उनके ' राम ' हों या उनकी रचनाएँ, दोनों ही गहन 'सामाजिकबोध और युगबोध' से ओतप्रोत हैं। मध्यकाल का यह कवि देशकाल को महत्व देने वाला है, उसकी संवेदना देश और काल की तीव्र अनुभूति से जगती है। अगर ऐसा नहीं होता तो वह क्यों कहते- 'मंगल करनि कलिमल हरनि तुलसी कथा रघुनाथ की' या 'कीरति भनिति भूति भलि सोई। सुरसरि सम सब कह हित होई।'[2] कहीं-न-कहीं अपनी रचनाओं में राम के महिमामंडन के बहाने लोककल्याण ही उनका इष्ट रहा है। तुलसीदास ने अपनी रचनाओं में जिन राम के गुणों का बखान किया है, वह भारत के सांस्कृतिक जीवन-मूल्यों के जीवंत प्रतीक है। उनका आचरण सदैव लोकपक्ष के अनुकूल रहा है। उनके द्वारा स्थापित जीवनादर्श आज भी भारतीय समाज में व्यक्ति और परिवार के आचरण का अभिन्न हिस्सा है। राम को ईश्वर से मनुष्य और मनुष्य से ईश्वर (अपने आचरण के द्वारा) बनाना तुलसी के कवि-कौशल का ही कमाल है। जाति, धर्म, संप्रदाय, भाषा, अर्थ के नाम पर छिन्न-भिन्न हुए जातीय जीवन को एक बार पुनः परिवार व समाज संबंधी सर्वोत्तम मूल्यों के आधार पर एक सूत्र में बांधने का महान प्रयास तुलसीदास ने किया और यह सारा कुछ 'एक समाज-सुधारक या दार्शनिक के रूप में नहीं बल्कि एक कवि के रूप में किया गया और यही बात निराला को भा गई। निश्चित तौर पर एक कवि के रूप में उनकी भूमिका (मध्यकाल में) को ध्यान में रखकर ही निराला ने उन्हें याद किया है।

'राम की शक्तिपूजा' की तरह 'तुलसीदास' भी निराला की एक लंबी कथात्मक कविता है, जिसमें भारत के सांस्कृतिक ह्रास की विशद पृष्ठभूमि को प्रस्तुत कर, प्रकृति के द्वारा उसके उत्थान की प्रेरणा का चित्रण कर तुलसी को 'हिन्दू-संस्कृति के जीर्णोधारक' के रूप में दिखाया गया है। जो काम निराला ने 'राम की शक्तिपूजा' में राम से 'शक्ति की मौलिक कल्पना' की अवधारणा को साकार करके करवाया, वही काम 'तुलसीदास' में तुलसी की रचनात्मक शक्ति (लेखनी) के माध्यम से करवाते हैं। दूधनाथ सिंह ने लिखा- 'रामकथा के रचयिता तुलसीदास और राम एवं निराला यहाँ एक हो जाते हैं। तुलसीदास के माध्यम से जन साधारण की दुर्दशा और सांस्कृतिक अंधकार की चिंता और उसकी सुरक्षा निराला के कवि की आधुनिक चिंता है। इन कविताओं में निराला ने स्वयं को दोहरे स्तर पर छुआ है। उनकी पहली चिंता ऐतिहासिक और राष्ट्रीय उन्नयन की है और दूसरी चिंता अपनी रचनात्मकता और प्रतिभा-तेजस्विता की छान-बीन, पुर्नपहचान तथा प्रतिष्ठा है। क्योंकि निराला जानते हैं कि उन्हीं के मंत्रपूत, ओजस्वी, मौलिक वाग्मिता और गहरे अध्ययन तथा जीवन और संस्कृति की विराट समझ के भीतर से ही पुनः भारतीय जनता के लिए आशा, विश्वास और आस्था का सूर्य उगेगा'।[3] निराला के 'निजत्व की समीपतम पहचान के कारण' ही ये कविताएं परंपरागत प्रबंध रूपों के निकट न होकर आधुनिक लंबी-कविताओं के शिल्प और स्थापत्य के अधिक निकट जान पड़ती हैं।

भारत के सांस्कृतिक-सूर्य के अस्त होने की सूचना के साथ ही इस कविता की शुरुआत होती है। जितनी महत्वपूर्ण घटना, वैसा ही प्रभावशाली चित्र –

'भारत के नभ के प्रभासूर्य।
शीतलाच्छाय सांस्कृतिक सूर्य
आक्रमित आज रे – तमाच्छुर्य दिग्मंडल ;।
उर के आसन पर शिराब्राभ ।
शासन करते हैं मुसलमान ; ।
है ऊर्मिल जल ,
निश्चल प्राण पर शतदल।'[4]

यह चित्र भारत के प्रकाशमान सांस्कृतिक-गौरव की आभा के खत्म होने की सूचना देता है। भारत के नभमंडल में जो सांस्कृतिक सूर्य चमक रहा था, वह अस्त हो चुका है। कारण मुगलों का आक्रमण (शासन) है। दिशाएँ अंधेरे की तुरही बजा रही हैं, जैसे यह उनके विजय का शंखनाद हो। परिणामस्वरूप चारों ओर घना अंधकार। यह अंधेरा जड़ता, अकर्मण्यता, चेतनाशून्य और कर्तव्य से विमुख होने का प्रतीक है। कवि को दुखद आश्चर्य इस बात पर है कि शासक के वास्तविक धर्म से च्युत और अपनी शक्ति के मद में चूर यह मुगल शासक भारतीयों को प्रताड़ित करते हैं, उनपर अत्याचार करते हैं, इसके बावजूद भारतीयों ने उन्हें अपने हृदय में स्थान दे रखा है। भारतीय संस्कृति का अस्तित्व खतरे में है, पर जैसे उन्हें कोई फर्क ही न पड़ता हो – 'है ऊर्मिल जल, निश्चल प्राण पर शतदल '।

निराला आगे कहते हैं कि भारत के नभ पर छाया यह सांस्कृतिक-अंधेरा (संध्या) कोई आज की बात नहीं, बल्कि यह कई सौ वर्षों से है – 'शत-शत शब्दों का सांध्यकाल'। 'बीते समय के साथ' यह अंधेरा इतना घना होता गया कि इसने भारत के एक एक प्रांत को अपने गिरफ्त (पराधीन) में ले लिया। यह घना अंधेरा उस भयावह स्थिति को मूर्त करने वाला

है, जो 'राम की शक्तिपूजा' में हमें देखने को मिलता है – 'है अमानिशा उगलता गगन घन अंधकार'। स्थिति यहाँ भी उतनी ही विकट है। जिस प्रकार वर्षाकाल में उन्मत्त नदियां अपनी धारा के हाहाकार में सबकुछ नष्ट करने को उतारू हो जाती है, वही हाल मुग़लों की सेना का है। मुग़लों की सेना बादल है और दर्प से चलते हुए पठान जल से भरे नद। मुग़लों की सेना के इस प्रलयकारी / विध्वंसकारी रूप का चित्र निराला ने इन शब्दों में खींचा है –

'मोगल-दल बल के जलद-यान,
दर्पित-पद उन्मद पठान
वहा रहे दिग्देशज्ञान, शर-खरतर,
छाया ऊपर घन-अंधकार
टूटता वज्र यह दुर्निवार,
नीचे प्लावन की प्रलय-धार, ध्वनि हर-हर।'

मुग़लों के इस प्रलयकारी आक्रमण के समक्ष क्या बुंदेलखंड और क्या कालिंजर (वीरता के प्रतीक) सब ध्वस्त। किसी में इतनी क्षमता नहीं कि वह उसके इस विध्वंसकारी रूप का सामना कर सके। बुंदेलखंड की तुलना कवि ने उस 'कुरबक पुष्प' से की है, जो किसी तरह डाल पर अटका हुआ है और जिसकी गंध समाप्त हो चुकी है। सूर्य की तेज से प्रदीप्त बुंदेलखंड, जो कभी अंधकार के समान अपने शत्रुओं का मान-मर्दन किया करता था, आज वही निस्तेज हो गया है। उसका वर्तमान आशा-उत्साह से शून्य है। कुछ ऐसी ही दशा कालिंजर की भी है। वीरों की यह भूमि वीरता से रिक्त हो चुकी है। क्योंकि जो सच्चे वीर पुरुष थे, वह संग्राम-भूमि में मुग़लों द्वारा बंदी बना लिए गए और जो बचे हैं, वह पुरुषत्व से हीन अपने राजनैतिक-सांस्कृतिक पराभव से बेखबर अपनी दासता पर उत्सव मना रहे हैं – 'नर हैं भीतर, बाहर किन्नर-गण गाते'। अब तो स्थिति यह है कि भारतीय सामाजिक जीवन की सारी छोटी-बड़ी नदियां इस्लाम के अपार सागर की ओर क्षिप्रता से प्रवाहमान है। यहाँ हिन्दुयों के धर्म-परिवर्तन, फारसी भाषा के प्रचार-प्रसार और इस्लामिक संस्कृति के अन्य प्रभावों के विस्तार की ओर संकेत किया गया है।

इस्लामी सभ्यता के इस प्रलयकारी आक्रमण के सम्मुख हिन्दू-संस्कृति का तेज समाप्त हो चुका है और अब धरती व आकाश इस्लामिक-संस्कृति की चाँदनी से रौशन है। घनघोर वर्षा के बाद शरद ऋतु के इस आगमन का चित्र निराला ने इन शब्दों में खींचा है-

'अब, धौत धरा, खिल गया गगन,
उर-उर को मधुर, ताप प्रशमन,
बहती समीर, चीर आलिंगन ज्यों उन्मन,
झरते हैं शशधर से क्षण-क्षण
पृथ्वी के अधरों पर निःस्वन
ज्योतिर्मय प्राणों का चुंबन, संजीवन।'

प्रकृति के सुकुमार उपादानों द्वारा कवि ने इस्लामिक सभ्यता के प्रसार और विलास का बड़ा ही मनमोहक दृश्य खड़ा किया है। इस ऋतु में बहने वाली हवा हृदय के दाह को शांत कर मधुरता का संचार करनेवाली है। उसका स्पर्श जैसे प्रिय का आलिंगन। यहाँ पृथ्वी प्रेमिका और चाँद उसका प्रेमी है, जो चुपचाप जीवनदायी चुंबन बरसा रहा है। इस विलासमयी सभ्यता के आकर्षण और सम्मोहन के पाश में बंधकर औसत भारतीय जन की स्थिति का सटीक चित्रण कवि ने किया है-

'भूला दुख, अब सुख-स्वरित जाल
फैला यह केवल कल्प-काल –
कामिनी-कुमुद-कर-कलित ताल पर चलता,
प्राणों की छवि मृदु-मंद-स्पंद,
लघु-गति, नियमित-पद, ललित छंद,
होगा कोई, जो निरानंद, कर मलता।'

लोग दुख भूल गए हैं, सुखद संगीत चतुर्दिक छाया हुआ है। कवि-दृष्टि में यह आमोद-प्रमोद केवल कल्पना का जाल है। लोग जीवन की वास्तविकता से विमुख केवल विलास की कल्पित जिंदगी जीने में व्यस्त हैं। ऐसे लोगों पर कवि द्वारा किया गया यह व्यंग्य द्रष्टव्य है- 'होगा कोई, जो निरानंद, कर मलता'। शायद ही कोई ऐसा हो जिसने स्वयं को इस विलासपूर्ण जीवन के आनंद से दूर कर रखा हो। इस विलासी मानसिकता ने भारतीय जन-जीवन में जड़ता, अकर्मण्यता, चेतनाहीनता को बढ़ावा दिया है। यह मुक्त-प्रवाह जीवन में सबसे बड़ी बाधा है। कवि कहता है कि तरंग में बहते हुए फूल को कब किनारे का बोध रहता है। कुछ यही हाल भारतीय जन-समूह का है-

'सोचता कहाँ रे, किधर कूल।
बहता तरंग का प्रमुद फूल?
यों इस प्रवाह में देश भूल खो बहता,।
'छल-छल-छल' कहता यद्दपि जल,
वह मंत्र-मुग्ध सुनता 'कल-कल,
निस्क्रिय, शोभा-प्रिय कूलोपल ज्यों रहता।'

देश अपनी जड़ से उखड़कर इस्लामिक संस्कृति के प्रवाह में बह रहा है। धारा का जल 'छल-छल-छल' कहता हुआ बह रहा है, लेकिन भारतीय जन मंत्र-मुग्ध होकर उसे 'कल-कल' के रूप में सुन रहे हैं। यहाँ 'छल' का अर्थ धोखा और 'कल' का अर्थ सुंदर के रूप में प्रयुक्त है, जो की व्यंग्य है। मंत्र-मुग्ध होकर 'कल–कल' ध्वनि सुनने वाले लोग बिलकुल निष्क्रिय हैं, घाट के पत्थर की तरह, जो प्रवाहमान नदी की शोभा को केवल निहारते रहते हैं। इस्लामिक सभ्यता के आकर्षण में फँसकर देश को अपनी दिशा और दशा का ज्ञान (उसे क्या करना चाहिए और क्या नहीं) ही नहीं रहा। यह 'सौंदर्यप्रेम' मिथ्या है, सर्जनात्मक्ता से रहित। खतरे को न भाँप कर आमोद-प्रमोद में डूबे लोगों पर कवि ने तीव्र व्यंग्यात्मक चोट की है।

इस्लामिक सभ्यता के प्रसार और स्वीकार की इसी पृष्ठभूमि में युवक 'तुलसीदास' का आगमन होता है। निराला ने अपने प्रिय व आदर्श कवि का बड़ा ही भव्य और उदात्त चित्र अंकित किया है-

'युवकों में प्रमुख रत्न-चेतन
समधीत-शास्त्र – काव्यालोचन
आयत दृग, पुष्ट देह, गत-भय,
अपने प्रकाश में निःसंशय
प्रतिभा के मंद-स्मित परिचय, संस्मारक;
प्रियजन को जीवन-चारु, चपल
जल की शोभा का-सा उत्पल,
सौर भौत्कलित अंबर-तल,
स्थल-स्थल दिक-दिक।'

तुलसीदास का व्यक्तित्व साधारण नहीं बल्कि 'समधीत-शास्त्र-काव्यालोचन' से स्वयं प्रकाशित 'युवकों में प्रमुख रत्न-चेतन' के समान है। वह अपने प्रियजनों के लिए सुंदर और जल को अलंकृत करने वाले कमल की तरह है, जिसकी सुगंध से सारा आकाश, दिशाएँ और स्थल महक उठता हो। नंद किशोर नवल के अनुसार- "यह है तुलसीदास की स्वस्थ, सुंदर, निर्भीक और आत्मविश्वास से युक्त प्रतिभावाली प्रसन्न प्रतिमा। तुलसीदास निराला के सर्वप्रिय और आदर्श कवि थे, उनके लिए कालिदास, रवीन्द्रनाथ से बढ़कर है, इसलिए उचित ही उन्होंने उनकी बहुत भव्य छवि अंकित की है।"[5]

यह सत्य है की एक कवि के रूप में निराला सहजभाव से तुलसीदास के आकर्षण से निरंतर बंधे रहे। भले ही युगों का अंतर हो लेकिन सर्जनात्मकता की भूमि पर दोनों में कहीं-न-कहीं आंतरिक साम्य है। डॉ. रामविलास शर्मा ने लिखा – " सिद्ध कवि तुलसीदास की पवित्र मूर्ति के सामने निराला शमशानवासी अघौरी जैसे लगते हैं, फिर भी दोनों में कहीं आंतरिक साम्य है। 'राम की शक्तिपूजा' को छोड़कर उन्होंने उदात्त स्तर पर जिस कविता को रचने में अपनी पूरी ताकत लगा दी, वह 'तुलसीदास' है। आप विचार करें, बांग्ला या अँग्रेजी में कवियों पर लिखी हुई कितनी ऐसी रचनाएँ हैं, जिनकी तुलना निराला के 'तुलसीदास' से की जा सकती है।"[6]

तुलसीदास का परिचय देने के बाद कवि ने उनकी चित्रकूट यात्रा का वर्णन किया है। यह कविता का अत्यंत महत्वपूर्ण प्रसंग है। क्योंकि प्रकृति के निकट में आकर ही भारत के इस भावी कवि की चेतना का जागरण होता है। प्रकृति अपने भावी-कवि को पाकर फूली नहीं समाती। ऐसा लगता है जैसे उनके मन पर से किसी ऋण का बोझ उतर गया हो, उनकी प्रतीक्षा की घड़ी खत्म हुई। उधर कवि भी प्रकृति से इस आत्मिक जुड़ाव को महसूस करता है। उन्होंने महसूस किया कि चित्रकूट उस समुद्र की तरह है, जो भीतर ही भीतर व्याकुल है लेकिन जिसे व्याकुलता का बोध नहीं, इसलिए ऊपर से निःशब्द है। लेकिन भारत के भावी कवि से आत्मिक स्तर पर जुड़कर प्रकृति के जड़-पदार्थ अपनी वेदना को यों प्रस्तुत करते हैं-

"जंगम जीवन!
भूले थे अब तक बंधु, प्रमन?
यह हताश्वास मन भार बहता;
तुम रहे छोड़ गृह मेरे कवि,
देखो यह धुलि-धूसरित छवि,
छाया इस पर केवल जड़
रवि स्वर दहता
फिर असुरों से होती क्षण-क्षण
स्मृति की पृथ्वी यह, दलित चरण;
वे सुप्त भाव, गुप्ताभूषण अब हैं सब।

तुम अबतक हमें भूले हुए थे। हम किसी तरह अपनी सांस ढ़ो रहे थे। तुम यहीं के वासी होकर यहीं से उदासीन हो। देखो इस चित्रकूट को, यह धूलि-धूसरित, सूर्य के प्रखर दाह से झुलसता जा रहा है। यह पुण्य-धरती मुसलमानों (असुरों) द्वारा क्षण-क्षण रौंदी जाती है। चित्रकूट के पास जो भी अच्छे भाव थे, वह सब जैसे लुप्त हो गये हों, जैसे कीमती आभूषण को कहीं छिपा कर रख दिया गया हो। चित्रकूट का निवेदन यहीं नहीं रुकता। वह आगे कहता है- तुम मुक्त हो, इस संसार से ऊपर उठ चुके हो, हे विहग, तुम सद्गान उचारो। तुम महान त्यागी हो, ध्यान की उच्च-भूमि पर पहुँचो। अपने ध्यान का तार चढ़ाओ और हिन्दू-संस्कृति के महिमामय जगत का स्पर्श प्रदान कर पाषाण-खंडों को फूलों के हार में बदल दो। ठीक वैसे ही जैसे प्रभु राम ने पाषाण हो गई अहिल्या को अपने चरण-धूलि के स्पर्श-मात्र से नया जीवन प्रदान किया था- *'दे स्पर्श अहल्यो-द्धार-सार उस जग का;।'*

यह वर्णन लाक्षणिक है। निराला ने प्रतीकात्मक ढंग से गौरव-शून्य तात्कालीन भारत की वेदना को स्वर दिया। निश्चित तौर पर यहाँ तक आते-आते 'चित्रकूट मुग़लों द्वारा प्रताड़ित और पीड़ित भारत-भूमि का पर्याय' बन जाता है। यहाँ चित्रकूट जैसे तुलसीदास का आह्वान कर रहा हो कि वे उसे इस दुर्दशा से मुक्ति दिलाएँ। क्योंकि यह कोई मामूली स्थान नहीं बल्कि इसका संबंध 'रामकथा' से है। जैसे वह तुलसीदास को यह बताने का प्रयास कर रहा हो कि अपनी रचनात्मक ऊर्जा का उपयोग किस दिशा में करना है। ईश्वरीय क्षमता का उपयोग अभिशापित के उद्धार के लिए करना, यही तो हिन्दू-संस्कृति का सार है। अहिल्या प्रसंग इसका जीवंत उदाहरण है। क्योंकि अगर यह न किया गया, तो फिर यहाँ बचेगा क्या? –

'अन्यथा यहाँ क्या? अंधकार,
बंधुर पथ, पंकिल सरि, कगार,
झरने, झाड़ी, कंटक; विहार पशु-खग का!'

इस प्रसंग के माध्यम से निराला हमें यह समझाने का प्रयास करते हैं कि- "इस सम्पूर्ण जड़-संस्कृति को, इस प्रस्तरीभूत भारतीय मेधा को 'राम' बनकर मुक्त करना होगा, जिससे वह अपने प्राचीन गौरव, अपनी पुरातन सुंदरता, और पवित्रता को पुनः प्राप्त कर सके। वे इस बंधुर पथ, जानवरों की अत्याचारी पशुवत आचरण करनेवाली, भारतीय प्रकृति-श्री को दबोचने-दबाने, अभिशप्त कर देने वाली आसुरी, विलासी-संस्कति के प्रसार को समझते हैं। इस पाषाणवत-

पड़ी संस्कृति का उद्धार केवल 'रामत्व' को अंगीकार करके ही संभव है।"[7]

प्रकृति के संदेश से प्रभावित होकर तुलसीदास का मन बद्ध संस्कारों की सीमा को पार कर मुक्ताकाश में विचरण करने लगता है। जैसे सुगंधित पवन मन को व्याकुल कर जाती है, ठीक इसी तरह प्रकृति के संदेश ने भी तुलसीदास के चित्त को उन्मन कर दिया है –

'बहकर समीर ज्यों पुष्पाकल
वन को कर जाती है व्याकुल,
हो गया चित्त कवि का त्यों तुलकर, उन्मन;
वह उस शाखा का
वन-विहग
छोड़ता रंग पर रंग-रंग जीवन।'

तुलसीदास के इस मानसिक ऊर्ध्वगमन को निराला ने बड़े ही उदात्त ढंग से काव्य के स्तर पर प्रतिष्ठित किया है। आदिकाल से लेकर द्विवेदी युग तक प्रकृति मानवीय-भावों के उद्दीपन का कारण रही, वह मानवीय-चेतना के प्रसार का कारण भी हो सकती है- ऐसा अबतक किसी ने सोचा नहीं। भारतीय जीवन-संस्कृति में हमने प्रकृति को बहुत कम स्थान दे रखा है, जबकि वह सम्पूर्ण मानव-जीवन की सहचरी और एक स्वतंत्र इकाई के रूप में सामने आती है। प्रकृति की स्वतंत्र-सत्ता को रेखांकित करते हुए उसे मानव-जीवन के अत्यंत निकट ले आने का श्रेय 'छायावाद' को जाता है। प्रकृति के माध्यम से तुलसीदास के मानसिक प्रसार को चित्रित कर निराला ने स्वयं मानव-जीवन में प्रकृति के महत्व को रेखांकित करने का प्रयास किया है।

प्रकृति का संदेश पाकर तुलसीदास का मन इस सांसारिक जीवन और उसके रंगों को पीछे छोड़ आत्ममुक्त होकर देश-दशा के बारे में चिंतन करने लगता है। ऊपर उठकर उन्होनें पाया कि सूर्य की आभा राहू से ग्रस्त है। सब जगह जैसे अंधकार की छाया व्याप्त है। यह अंधेरा ही मनुष्य को उसके 'वृहत' (हिन्दू संस्कृति के सर्वोच्च मूल्य; वह आध्यात्मिक बोध, जिससे संयुक्त होकर व्यक्ति और समाज अपनी लघुता से छुटकारा पाकर महत्ता को प्राप्त करते हैं।) से दूर करता जा रहा है। मन की इस ऊर्ध्व उड़ान में तुलसीदास तत्कालीन भारत की सच्ची तस्वीर देख पाते हैं-

'बंध भिन्न-भिन्न भावों के दल
क्षुद्र से क्षुद्रतर हुए विकल
पूजा में भी प्रतिरोध-अनल है जलता,
हो रहा भस्म अपना जीवन
चेतनाहीन फिर भी चेतन
अपने ही मन को यों प्रतिमन है छलता। '

उन्होनें पाया कि पतन का कारण भारतीय समाज में ही मौजूद है। यह समाज वैचारिक दृष्टि से खंड-खंड हो, विरोध-भाव से मुक्त नहीं रहा। धर्म भी यहाँ पारस्परिक द्वेष का कारण है। ईश्वरोपासना में जहाँ आरती की शिखा जलनी चाहिए, वहाँ प्रतिरोध की आग जलती है। क्षुद्र भावों से परिचालित और सर्जनात्मक दृष्टि से शून्य मनुष्य स्वयं को चेतन समझता है-'चेतनाहीन फिर भी चेतन'। यानी वह स्वयं को ही धोखें में रखता है। जीवन की विसंगति यही नहीं बल्कि भारतीय सभ्यता-संस्कृति के विघटन के मूल में बहुत कुछ निम्न-वर्ग की (जर्जर वर्ण-व्यवस्था) शोचनीय दशा है-

'चलते-फिरते पर निस्सहाय,
वे दीन, क्षीण कंकालकाय;
आशा केवल जीवनोपाय उर-उर में;
रण के अश्वों से शस्य सकल
दल मल जाते ज्यों, दल से दल
शूद्रगण क्षुद्र-जीवन-संबल, पुर-पुर में।'

धार्मिक, वैचारिक वैमनस्य के साथ भंग हो चुकी वर्ण-व्यवस्था ने देश को बहुत ही कमजोर बना दिया था। क्षत्रिय देश-रक्षा के धर्म से विमुख, भौतिक लिप्सा और पारस्परिक द्वेष के जाल में उलझ चुके थे। ब्राह्मणों का काम सिर्फ चापलूसी करना रह गया था और शूद्रों कि स्थिति सबसे दयनीय थी। क्योंकि सब के अत्याचार और अन्याय से वह पहले ही हारे हुए थे। ऐसे में जातीय जीवन को एकसूत्र में बांधे रख पाना असंभव था। इस धरती पर इस्लामिक सभ्यता के प्रसार में ये परिस्थितियाँ कारगर सिद्ध हुई। इस संदर्भ में विवेकानन्द की कही हुई बात ध्यान देने योग्य है- "चूंकी उन्होनें साधारण जनता को वह संपत्ति (युगों की संचित शिक्षा और संस्कार) नहीं दी, इसीलिए मुसलमानों का आक्रांत संभव हो सका था। हम जो हजारों वर्षों तक भारत पर धावा बोलनेवाले जिस किसी के पैरों तले कुचले जाते रहे, इसका कारण यही है कि ब्राह्मणों ने शुरू से ही साधारण जनता के लिए वह खजाना खोल नहीं दिया। हम इसीलिए अवनत हो गए। यही कारण है कि हमारी एक पंचमांश जनता मुसलमान हो गई। यह सारा काम तलवार से नहीं हुआ। यह सोचना कि यह सभी तलवार और आग का काम था, बेहद पागलपन होगा।"[8]

यहाँ तक आकर तुलसीदास ने मध्यकालीन समाज की मूल समस्या को अच्छी तरह पहचान लिया था, जो युग से गहरे जुड़ाव के बिना संभव नहीं। दीन-हीन, पददलित लोगों के प्रति तुलसीदास की यह सहानुभूति और संवेदना अगर किसी को अस्वाभाविक (क्योंकि कुछ विद्वानों ने मध्यकाल के इस महान लोकवादी कवि को द्विजसमर्थक और ब्राह्मणवादी-सामंतवादी मानसिकता का बताकर, उन्हें प्रगतिशील खेमे से बाहर करने का प्रयास किया है) लगे तो रामविलास जी के इस कथन पर ध्यान दें -"तुलसीदास संत और भक्त होते हुए भी बहुत बड़े समाज-सुधारक थे, इसमें आज किसी को संदेह नहीं रह गया। लेकिन उनके हृदय में मनुष्यों के दलित वर्ग के लिए कितनी सहानुभूति थी, इसे हम अपने वर्तमान संस्कारों के कारण बहुधा भूल जाते हैं। यदि किसी को निराला जी की कविता में उनका चरित्र अस्वाभाविक लगे, तो उसे मानस में

'बिन अन्न दुखी सब लोग मरै' आदि कलि-युग का वर्णन पद लेना चाहिए।" -[9]

तुलसीदास की चिंता यहीं आकर खत्म नहीं होती। उन्होनें पाया कि 'इस्लाम की छाया' बहुत व्यापक है और सम्पूर्ण जनमानस इस छाया से बंध। 'तम का आसव पीकर' ऐसा बेसुध पड़ा है कि उसे अपनी जड़ता, अज्ञानता का बोध ही नहीं-

'इस छाया के भीतर है सब,
है बंधा हुआ सारा कलरव,
भूले सब इस तम का आसव पी-पीकर।'

जीवन की सारी गत्यात्मकता, सर्जनशीलता समाप्त हो चुकी है। मुक्त-जीवन का अभिलाषी यह कवि भारतीय जनमानस की यह दशा देख भीतर ही भीतर छटपटा उठता है। क्योंकि ऐसी दशा में - 'इसके भीतर रह देशकाल। हो सकेगा न रे मुक्त भाल। पहले का सा उन्नत विशाल ज्योति :सर।' सिर्फ भंग वर्ण-व्यवस्था या शूद्रों पर हुआ अत्याचार और अन्याय ही इस स्थिति का दायी नहीं और न ही शूद्र शक्ति को संगठित करके इस परिस्थिति से छुटकारा संभव है बल्कि इसके लिए यह अत्यंत आवश्यक है कि - अपनी भौतिक-लिप्सायों को पूर्ण करने की भावना से ऊपर उठ जाना –

'दीनों की भी दुर्बल पुकार
कर सकती नहीं कदापि पार ।
पार्थि वैश्वर्य का अंधकार पीड़ा कर ,
जब तक कांक्षाओं के प्रहार
अपने साधन को बार- बार
होंगे भारत पर इस प्रकार तपभापार।'

यहाँ कवि के चिंतन पर वेदान्त का प्रभाव दृष्टिगोचर होता है लेकिन उसका लक्ष्य जीवन की समस्याओं से भागकर वैराग्य की शरण लेना नहीं बल्कि उससे दो-दो हाथ करके जीवन को बेहतर बनाना है। इसीलिए जीवन में व्याप्त जड़ता और अज्ञानता रूपी अंधेरे को दूर करने के लिए वह 'ज्ञान के प्रकाश' की तलाश में है और वह मिलेगा कहाँ –

'इस अनिल-वाह के पार प्रखर
किरणों का वह ज्योतिर्मय घर
रविकुल-जीवन-चुबनकर मानस धज जो।'

हम सभी जानते हैं कि तुलसीदास रामभक्त कवि थे और उनके प्रभु 'श्री राम' सूर्यवंशी यानी 'रवि-कुल' से और उनका चुंबन लेने वाली (प्रेम करनेवाली) भावना ही यहां 'मानस-धन' है। तात्पर्य यह कि वही 'सर्वश्रेष्ठ भावना' है और इसी भावना को आत्मसात कर हम मुक्त हो सकते हैं। नहीं तो यह संसार निश्चय ही 'अंधकूप' है –

'है वही मुक्ति का सत्य रूप ,
यह कूप-कूप भव-अंध कूप ;
वह रंक , यंहा जो हुआ भूप , निश्चय रे
चाहिए उसे और भी और ,
फिर साधारण को कहाँ ठौर?
जीवन के जग के, यही तौर हैं जय के।'

उपर्युक्त पंक्तियाँ रामभक्ति का महत्व दर्शाता है। तुलसीदास ने जब 'मानस' की रचना की तो उन्होंने अपनी इस कृति की विशेषता बतायी – 'यहि मंह रघुपति नाम उदारा। अति पावन पुरान श्रुति सारा। मंगल भवन अमंगल हारी। उमा सहित जेहि जपत पुरारी'। यानी राम की इस कथा में समस्त वेदों, पुराणों, उपनिषदों, का सार निहित है, जो जीवन में अमंगल (जीवन के अंधेरे) को दूर कर मंगल (ज्ञान का प्रकाश) को लाने वाला है। जो व्यक्ति इस संसार में सारी भौतिक सुख-सुविधाओं को एकत्र कर स्वयं को राजा मान बैठता है, उसे ही जीवन का चरम सुख मानता है, आध्यात्मिक दृष्टि से वह व्यक्ति 'रंक' है। ईश्वरीय विभूति से वंचित। क्योंकि कहीं-न-कहीं वह दूसरों के अधिकारों को छीनकर ही वहाँ तक पहुंचता है। ऐसे में जो सामान्य व्यक्ति हैं, उनका क्या होगा? सबल और सबल होता जाय और निर्बल और निर्बल- दुनिया की यह रीति तुलसीदास की समझ के परे है।

ऐसी स्थिति में तुलसीदास की ऊर्ध्वमुखी चेतना जीवन के इस अंधकार को दूर करने का संकल्प लेती है। उन्होनें यह भली-भांति समझ लिया है कि 'सत्य का मिहिर-द्वार इस इस्लामी-सभ्यता के परे है-

'करना होगा यह तिमिर पार-
देखना सत्य का मिहिर-द्वार-
बहता जीवन है प्रखर ज्वार में निश्चय
लड़ना विरोध से द्वन्द्व-समर
रह सत्य-मार्ग पर स्थिर निर्भर।'

इन पंक्तियों से स्पष्ट है कि लक्ष्य तक पहुंचना आसान नहीं। जीवन में संघर्ष कठिन है। लेकिन दृढ़ इच्छाशक्ति, संकल्प और साहस के साथ मनुष्य जीवन में बाधाओं का अतिक्रमण कर ही जाता है। याद कीजिए 'शक्तिपूजा' में राम इसी अंधकार से घिरे हुए थे। उन्हें भी इस अंधकार के पार जाना था। 'शक्ति की मौलिक कल्पना' को साकार कर राम इस अंधकार से विजय प्राप्त करते हैं और निराला के तुलसीदास 'अपनी रचनात्मकता की सही दिशा की पहचान और अपनी मौलिक प्रतिभा की शक्ति से' इस तिमिर को पार करने को तैयार होते हैं-

'कल्मपोत्सार कवि के दुर्दम,
चेतनोर्मियों के प्राण प्रथम,
वह रुद्ध द्वार का छाया-तम हरने को
करने को ज्ञानोद्धत प्रहार-
तोड़ने को विषम वज्र-द्वार;
उमड़े भारत का भ्रम अपार हरने को।'

यह है रचनात्मकता की असली शक्ति, उसकी सही दिशा। कवि-कर्म का उदात्त रूप। संकल्प शक्ति के साथ ही उनके भीतर सभी कल्मषों को नष्ट कर देनेवाली चेतना की दुर्दमनीय तरंगें उठने लगीं। उन्हीं के ज्ञानोध्द्त प्रहार से कवि उस विषम वज्रद्वार को तोड़ने की बात करता है। और सबसे बड़ी बात यह कि यह सारा उपक्रम केवल अपनी मुक्ति के लिए नहीं बल्कि –' भारत का भ्रम अपार हरने को'। उनके

सम्मुख पूरा देश खड़ा है। यह कवि महान लक्ष्यों के साथ अपने कवि-कर्म में प्रवृत्त होता है और यही बात इसे एक महान रचनाकार बनाती है।

यहाँ जो बात ध्यान में रखने की है वह यह कि यह सारा क्रिया व्यापार तुलसीदास के मनोजगत में संपन्न होता है। ठीक वैसे ही जैसे 'राम की शक्तिपूजा' में 'हनुमान का ऊर्ध्व गमन'। रामविलास जी ने तुलसीदास के इस मानसिक ऊर्ध्वगमन को 'रहस्यवाद से संबंध रखनेवाली भावना-प्रणाली' से जोड़कर देखने का प्रयास किया है। लेकिन नंदकिशोर नवल और दूधनाथ सिंह दोनों ही रामविलास जी की इस बात से सहमत नहीं हैं। नवल जी का मानना है कि निराला के चिंतन पर वेदान्त की पद्धति और शब्दावली का गहरा प्रभाव है, साथ ही वह इस्लामिक संस्कृति को माया के रूप में देखते हैं, हिन्दू-संस्कृति और उसके उद्धार-कार्य को ब्रह्म और उसकी प्राप्ति के समान और उधर से विमुख होकर काम-भाव से ग्रस्त होने को जीव की सांसारिकता में लिप्त होना मानते हैं, लेकिन उनका लक्ष्य 'रहस्यवाद' नहीं; वह शुद्ध रूप से सामाजिक है- इस्लामिक संस्कृति के हमले से भारतीय संस्कृति को बचाना और उनकी पुनःस्थापना। वहीं दूधनाथ सिंह के अनुसार-' यह ऊर्ध्वगामिता रहस्यवाद का पर्याय नहीं है। कवि का इष्ट तो रचनात्मकता की मनोवैज्ञानिक व्याख्या है। मन की इस ऊर्ध्वगामिता भी तुलसीदास 'देश की राहुग्रस्त आभा' को देखना भूलते नहीं। उनका जीवन इस जन-वेदना से भस्मसात हो रहा है। वे धीरे-धीरे जीवन के विराट व्यापक-अनुभव को उसी तरह अपनी रचना के लिए संचित करते हैं, जैसे ऋतु के प्रभाव को कोई पेड़। वह उसी तरह अपने अंतर को धीरे-धीरे समृद्ध और पूर्ण करते जाते है'।[10] इस प्रकार तुलसीदास का यह मानसिक प्रसार रचनात्मक आनंद के प्रथम अनुभव का सूक्ष्म विश्लेषण बन जाता है ।

आगे हम देखते हैं कि इस कविता में एक नाटकीय मोड़ आता है, जो पाठकों के आकर्षण का केंद्र बन जाता है। तुलसीदास का दृढ़ संकल्प अपनी पत्नी रत्नावली के स्मृति-चित्र को देखकर डगमगा जाता है। यह निराला की मनोवैज्ञानिक कुशलता का प्रमाण है कि तुलसीदास के ऊर्ध्वोन्मुख मानस के चित्रण के ठीक बाद रत्नावली के प्रबल आकर्षण का प्रसंग रखा है। एक ओर जहाँ 'राम की शक्तिपूजा' में सीता का स्मृति-चित्र राम के मन में एक पल के लिए नई आशा-उत्साह और साहस का संचार करता है, वहीं दूसरी ओर रत्नावली का यह स्मृति-चित्र तुलसीदास को उनके संकल्प से डिगाने वाला होता है- 'वामा, इस पथ पर हुई वाम सरितोपम'। यानी तुलसीदास के साधना-मार्ग पर पत्नी रत्नावली की कामिनी-मूर्ति बाधा-स्वरूप होकर उसी प्रकार खड़ी हो गई, जिस प्रकार किसी यात्री की राह में नदी। चित्रकूट में तुलसीदास ने चिंतन करके कुछ निश्चय किया ही था कि-

'जाते हो कहाँ? तुले तिर्यक
दृग, पहनाकर ज्योतिर्मय सृक
प्रियतम को ज्यों, बोले सम्यक शासन से;
फिर लिये मूँद वे पक्ष्मल –
इंदीवर के-से कोश विमल;
फिर हुई अदृश्य शक्ति पुष्कल उस तन से।'

प्रिया के उठे इन तिर्यक आँखों ने प्रिय को ज्योति की माला पहना दी हो। सौंदर्य के इस प्रभाव ने तुलसीदास के भीतर चित्रकूट प्रेरित चिंतन से उत्पन्न शक्ति को तिरोहित कर दिया। तुलसीदास के जिस मन को पहले हम 'वन-विहंग' के रूप में देख आए हैं, वही मन यहाँ 'मधुकर' बन बैठा है। वह रत्नावली के 'कमल' रूपी नेत्र के आकर्षण से बंधकर सुरभिपान के लिए अभी उसपर बैठा ही था कि उसकी पंखुड़ियाँ बंद हो गई और वह उड़ने में असमर्थ उसी के भीतर रह गया। प्रिया के प्रति प्रेम का यह आकर्षण इतना प्रबल है कि उसने तुलसीदास के देखने का नजरिया ही बदल दिया। अब 'चित्रकूट' उनके लिए 'बंधुर पथ, पंकिल सरि, कगार' वाला नहीं रह गया बल्कि अतिशय सुंदर हो उठा। वहाँ के रजकण उन्हें केसर प्रतीत होने लगे और पर्वत हीरक-शैल –

'उतरा वह मन धीरे-धीरे,
यह वही प्रकृति पर रूप अन्य;
जग-मग –जग-मग सब वेश वन्य;
सुरभित देशि-दिशि, कवि हुआ धन्य, मायाशय। '

ऊर्ध्वगमन की जिस शक्ति से तुलसीदास का मन चित्रकूट की वास्तविक दशा को देख व्यथित था, उसे मुक्ति दिलाने के लिए संकल्पबद्ध था, आज वही मन माया के प्रबल आकर्षण में फँसकर अपनी शक्ति को खोकर जीवन की समतल भूमि पर आ गया है। जैसे वह अबतक का सबकुछ भूल गया हो, अब जो सामने है, वही सत्य है। निराला के कवि-कौशल की प्रशंसा करते हुए नवल जी ने इस प्रसंग पर बड़ी ही सार्थक टिप्पणी की है- " तुलसीदास देश-दशा की चिंता से पीड़ित,तत्पश्चात उद्बुद्ध होकर महान संकल्प करते हैं, लेकिन फिर स्वाभाविक रूप से रत्नावली के सौंदर्य और प्रेम में आबद्ध हो जाते हैं। भौंरा फूलों की पंखुड़ियों के भीतर बंद हो गया; कवि माया में फंस गया। उसने बाहर निकलने के लिए कोई संघर्ष न किया। क्योंकि जितना प्रबल संकल्प था, निराला का वर्णन बतलाता है कि उससे कम प्रबल प्रिया का सौंदर्य और प्रेम नहीं था। कवि रूप में निराला की श्रेष्ठता का यही प्रमाण है कि वे कविता में देश, संस्कृति, वेदान्त, आदि को महत्व नहीं देते, मानवीय दुर्बलताओं को भी महत्व देते हैं और व्यक्ति-मन की अथाह गहराइयों में उतरकर उनका चित्रण करते हैं। वे ब्रह्म के ही नहीं, माया के भी कवि हैं और यही उनकी शक्ति है।" -[11]

आइए अब निराला कृत रत्नावली के उस अपरूप सौंदर्य का चित्र देख लें, जिसने खुले आकाश में उन्मुक्त विचरण करने वाले तुलसीदास के मन को बांध लिया है-

'प्रेयसी के अलक नील,व्योम ;
दृग-पलक कलंक-मुख मंजु सोम;

निः सृत प्रकाश जो, तरुण क्षोम प्रिय तन पर;
पुलकित प्रतिपल मानस-चकोर
देखता भूल दिक उसी ओर;
कुल इच्छायों का वही छोर जीवन भर।'

रत्नावली की नीली केशराशि नीले आकाश की तरह है, उसका सुंदर मुख चंद्र की तरह और उसकी काली आँखें तथा बरौनियां चंद्रमा की कलंक की तरह। मुखचन्द्र से निकलने वाला यह प्रकाश तुलसीदास के शरीर पर रेशम के नए वस्त्र की तरह बिछलता है। जिस प्रकार चंद्रमा को पाकर चकोर प्रफुल्लित होता है, वही हाल रत्नावली को देखकर तुलसीदास का है। रत्नावली के प्रति अपनी इस आसक्ति को ही वह जीवन का मूल तत्व मान बैठते हैं- 'कुल इच्छाओं का वही छोर जीवन भर।' दरअसल रत्नावली के प्रति अपने जिस आकर्षण को तुलसीदास प्रेम समझ रहे हैं, वह वास्तव में प्रेम नहीं, मोह है, आसक्ति है। 'प्रियावरण प्रकाश' –प्रिया का वास्तविक प्रकाश नहीं। लेकिन इसी प्रकाश को वह सर्वत्र (दिन , मास, ऋतु, सूर्य, विश्व) देखने और उसकी गति में बंधकर 'बुद्धत्व' प्राप्त करने की बात कहते हैं। सांस्कृतिक ह्रास को चित्रित करते हुए निराला ने पहले ही लिखा – 'अपने ही मन को यों प्रति मन है छलता'। यहाँ तुलसीदास की स्थिति उससे अलग नहीं। ऐसे में मोह से आविष्ट मन अगर सोचे-' सहज पड़ते पग सध' तो कोई आश्चर्य की बात नहीं। भ्रमित मन अपने आपको किस प्रकार तर्क देकर संतुष्ट करता है, यह यहाँ देखिए –

'बंध के बिना, कह, कहाँ प्रगति?
गतिहीन जीव को कहाँ सुरति?
रति-रहित कहाँ सुख? केवल क्षति- केवल क्षति;
यह क्रम-विनाश; इससे चलकर
आता सत्वर मन निम्न उतर
छूटता अंत में चेतन स्तर, जाती मति।'

तुलसीदास का मानना है कि बंधन के बिना प्रगति संभव नहीं है। जो जीवन इस सांसारिक गति में नहीं पड़ा, उसे ईश्वरीय प्रेम की प्राप्ति कैसे होगी? रति के बिना सुख कहाँ। जो व्यक्ति जीवन में रति को महत्व नहीं देता, वह विनाश के पथ पर है और उसका मन चेतन स्तर से उतरकर निम्नस्तर पर आ जाता है। उसकी मति मारी जाती है। अपनी बात रखने के लिए वह एक उदाहरण देते हैं-

'देखो प्रसून को वह उन्मुख !
रंग, रेणु-गंध भर व्याकुल सुख,
देखता ज्योतिमुख : आया दुख पीड़ा सह
चटका कलि का अबरोध सदल,
वह शोधशक्ति, जो गंधोच्छल,
खुल पड़ती पल-प्रकाश को, चल परिचय वह।'

सुख से व्याकुल, वातावरण में रंग, पराग और सुगंध बिखेरते फूल को प्रकाश की प्राप्ति कैसे हो गई? उसे बंधन में रहना पड़ा, उसका दुख सहना पड़ा। तत्पश्चात उसके भीतर स्थित प्रकाश को ढूंढ़ने वाली गंधोछच्ल शक्ति (सत्य) संपुटित पंखुड़ियों के अवरोध को हटाकर बाहर आई। तभी उसने प्रकाश को पाया। यानी- 'बंध के बिना, कह, कहाँ प्रगति?' ही जीवन का सत्य है। लेकिन निराला तुलसीदास के इस तर्क से सहमत नहीं। उनका स्पष्ट मानना है कि एक चेतनाशून्य मनुष्य भला यह क्यों सोचने लगा कि उसका मोह भ्रम है, सत्य नहीं। अपनी बात को निराला बड़े ही जोरदार ढंग से प्रस्तुत करते हैं –

'सोचता कौन प्रति हत-चेतन-
वे नहीं प्रिया के नयन, नयन ;
वह केवल वहाँ मीन-केतन, युवती में;
अपने वश में कर पुरुष-देश
है उड़ा रहा धव्ज-मुक्तकेश ;
तरुणी-तनु आलंबन-विशेष, पृथ्वी में।'

कवि का कहना है कि जिसकी चेतना नष्ट हो गई हो, वह इसी तरह सोचेगा। रत्नावली की जिन आँखों के आकर्षण में तुलसीदास बंधे हैं, उनमें मार्ग-दर्शन की ज्योति नहीं है बल्कि काम की आग है, जो मनुष्य को उसके पथ से डिगा देती है। सुंदर आँखों की आकृति मछली की तरह होती है। इसलिए रत्नावली की आँखों को कवि ने 'मीनकेतन' कहा है। जिस प्रकार किसी देश को जीतकर कोई राजा वहाँ अपनी पताका फहरा देता है, ठीक उसी प्रकार कामदेव भी पुरुषदेश को जीतकर अपनी ध्वजा फहरा रहा था। इस धरा पर उस ध्वज का आलंबन है- 'तरुणी-तनु'। यानी युवती के शरीर का प्रबल आकर्षण ही कामदेव का प्रमुख अस्त्र है। रत्नावली के प्रति तुलसीदास की इस आसक्ति को हम 'व्यक्तिगत कामुकता' के रूप में न देखकर सामाजिक ह्रास के प्रतीक के रूप में भी देख सकते हैं। इस संदर्भ में डॉ॰ रेखा खरे का कहना है कि – "तुलसीदास के तर्कों का खोखलापन कवि इतने विस्तार में, विविध बिंबों में प्रस्तुत कर रहा है, यह भी साभिप्राय है। लक्ष्य तुलसीदास नहीं है, लक्ष्य है- सांस्कृतिक चेतना से शून्य, विलासिता के गर्त में गिरी तत्कालीन जनता।"[12]

रत्नावली पति को प्रेम करनेवाली 'श्रद्धा का वह पुंजीभूत रूप' है, जो उनके हाथों में 'सत्य की यष्टि' की तरह है और उन्हें किसी अज्ञात पुण्य के कारण प्राप्त है। वह 'प्रेम के फाग में आग त्याग की तरुणा' है। इस मायालोक में वह एक पत्नी की हैसियत से उनकी शय्या पर लेटी तो है, लेकिन तुलसीदास के प्रेम की नश्वरता को भी वह समझती है। इसलिए रत्नावली धीरे-धीरे तुलसी के मोहान्धकार से बाहर निकाल जाती है – 'धीरे-धीरे वह हुआ, पार तारा-धुति से बध अंधकार।' तुलसीदास अपने सुख के लिए रत्नावली को छोड़ने को तैयार नहीं लेकिन उसे 'धर्म की और राम की चिंता है, अत: वह त्याग को प्रस्तुत है। ऐसे ही पत्नी-प्रेम में आनंद-मग्न तुलसीदास के जीवन में एक नया मोड़ आता है। रत्नावली को मायके ले जाने उसका भाई घर आता है और शिकायत के ढंग से कहता है- 'हम कई बार आ-आकर घर/ लौटे पाकर झूठे उत्तर;/' तुम्हारे

घर न जाने की वजह से गाँव में हमारी निंदा हो रही है कि हमने तुम्हें उनके हाथों बेच दिया। घर के सारे लोग विवाह के बाद तुम्हें देखने को व्याकुल हैं, विशेष तौर पर माँ-बापू। भाई ने पत्नी-प्रेम के धर्म के ऊपर, पुत्री और बहन होने के दायित्व-बोध को भी याद दिलाने का प्रयास किया –

' क्यों बहन, व्याह हो जाने पर, घर पहला
केवल कहने को है नैहर?
दे सकता नहीं स्नेह-आदर?
पूजे पद, हम इसलिए अपर?'

और वह अपने प्रयास में सफल रहा । उसकी कही एक-एक बात का रत्नावली पर गहरा असर हुआ और फिर –' धूल अश्रु-धार से हुई अतुल छवि पावन।' उसने तय कर लिया कि वह माँ के घर जाएगी। वह दृढ़ निश्चय का भाव लिए भाई से कहती है-

'मैं साथ तुम्हारे, करो तोष
जिस पृथ्वी से निकली सदोष वह सीता,
अंक में उसी के आज लीन –
निज मर्यादा पर समासीन;
दे गयी सुहृद को स्नेह-क्षण गत गीता।'

जिस प्रकार सीता का जन्म पृथ्वी की गोद से हुआ और दोष लगाए जाने पर वह अपनी मर्यादा-रक्षा के लिए अंत में उसी की गोद में समा गई। वही स्थिति यहाँ रत्नावली की है। अंतिम पंक्ति ध्यान देने योग्य है। वह अपने मित्र के हाथों (पति को देने के लिए) 'गीता' थमाकर चली गयी। 'गीता' क्यों? क्योंकि इसमें 'प्रेम अथवा मोह पर कर्तव्य अथवा धर्म के स्थापन की गाथा' है। रत्नावली के जाने पर निराला कहते हैं-

'चल दी प्रतिमा
घर अंधकार अब बहता।'

यानी घर की ज्योति गई और अब चारों ओर अंधकार बहता है।

तुलसीदास की अनुपस्थिति में रत्नावली को मायके जाना पड़ा, क्योंकि रत्नावली के प्रति तुलसीदास का प्रेम साधारण नहीं था और वह उसमें बाधक बनता। रत्नावली को घर में न पाकर तुलसीदास को सारी बात समझ में आ गई और उनके भावुक मन को बहुत ठेस पहुँचती है। उनके लिए पत्नी से दूरी असह्य हो जाती है और वह लोक की मर्यादा और व्यावहारिक आचरण के ज्ञान को भुलाकर सीधे अपने ससुराल रत्नावली से मिलने चल पड़ते हैं। पति का यूँ अचानक आना रत्नावली को अच्छा नहीं लगता, जो कि स्वाभाविक है। परिवार के सदस्यों की कानाफूसी और भाभी के तीखे व्यंग्य (रत्न को इन्होनें ही पहचाना है) ने आग में घी का काम किया। रत्नावली के मन में बहुत कुछ चल रहा होता है। उसके तीव्र मानसिक उद्वेलन और दुविधाग्रस्त मनःस्थिति का चित्रण निराला ने इन शब्दों में किया है-

'बोली मन में होकर अक्षम
रक्खो, मर्यादा पुरुषोत्तम
लाज का आज भूषण, अकलम नारी का;
खींचता छोर, यह कौन और,
पैठा उनमें जो अधम चोर!
खुलता, अब अंचल, नाथ, पौर साड़ी का।'

ऐसी विकट परिस्थिति में स्वयं को असमर्थ पाकर वह मन-ही-मन कृष्ण को पुकारती है, जिन्होनें भरी सभा में द्रौपदी के लाज की रक्षा की थी। नारी पर लगने वाले 'अकलम' को रोकने और लाज के भूषण को बचाने की क्षमता केवल 'मर्यादा पुरुषोत्तम' (जो आज तुलसीदास के आचरण में दिखाई नहीं पड़ रहा है।) के पास ही है। तुलसीदास को भोजन कराकर रत्नावली की भाभी उन्हें शयन के लिए कमरे की तरफ ले जाती हैं। शयन-कक्ष में आज तुलसीदास को रत्नावली का एक अलग ही रूप दिखाई पड़ता है- क्षोभ और आक्रोश से भरा हुआ –

'कवि रुचि में घिर छलकता रुचिर
जो, न था भाव वह छवि का स्थिर
बहती उल्टी ही आज रुधिर-धारा वह,
लख-लख प्रियतम-मुख पूर्ण इंदु
लहराया जो उर-मधुर सिंधु
विपरीत ज्वार, जल बिन्दु-बिन्दु द्वारा वह।'

तुलसी की कल्पना में रत्नावली का जो रूप हुआ करता था, आज वह वास्तव में था नहीं। तुलसीदास को आज उसकी आँखों में प्रेम का वह स्थिर भाव दिखा नहीं बल्कि –'बहती उल्टी ही आज रुधिर-धारा वह।' तुलसीदास के यूँ अप्रत्याशित ससुराल पहुँचने पर अपने प्रति उनके प्रेम को असाधारण मानकर वह प्रसन्न तो हुई लेकिन भाभी के व्यंग्य ने उसकी धार विपरीत कर दी। प्रिय के मुखरूपी चंद्र को देखकर उसके हृदय में प्रेम का जो ज्वार उठा था, वह जल के बिन्दु-बिन्दु में बिखर गया।

तुलसीदास रत्नावली के इस नये रूप को देखते भर हैं, समझ नहीं पाते, उनके मन में अब भी रूप का आकर्षण बना हुआ है –

'उन्मुक्त-गुच्छ चक्रांक-पुच्छ,
लख नर्तित कवि-शिखि-मन समुच्च
वह जीवन की समझा न तुच्छ छलना वह'।

तुलसीदास का मन रूपी मयूर उस मेघमाला को देखकर अपना चक्रांकित पुच्छ खोले जोरों से नृत्य कर रहा था। वह यह न समझ पाया कि जो वह देख रहा है, वह सत्य नहीं बल्कि जीवन द्वारा किया जाने वाला छल है। यहाँ दो परस्पर विरोधी परिस्थितियों और भावों का चित्रण कर निराला ने यह प्रमाणित कर दिया कि –"उनका दृष्टिकोण एक दार्शनिक या उपदेशकवाला न था, जो मनुष्य के मन में प्रवेश कर उसकी स्थिति को समझने की कोशिश नहीं करता और सिर्फ उपदेश अथवा निर्देश दिया करता है। निराला कवि थे, वे रत्नावली और तुलसीदास दोनों के मन में प्रवेश कर दोनों की स्थिति को समझते हुए, दोनों के प्रति सहानुभूति प्रदर्शित करते हुए, अपनी बात कहते हैं।"[13]

एक तरफ पत्नी-प्रेम के मोह-पाश में बंधा तुलसीदास का चंचल, परवश मन तो दूसरी तरफ उन्हें इस मोह-पाश से मुक्त करने को प्रतिबद्ध रत्नावली के विराट-दिव्य योगिनी रूप का यह चित्र देखें –

'बिखरी छूटीं शफरी अलकें,
निष्पात नयन-नीरज पलकें,
भावातुर पृथु उर की छलकें उपशमिता;
निःसंबल केवल ध्यान-मग्न
जागी योगिनी अरूप-लग्न
वह खड़ी शीर्ण प्रियभाव-भग्न निरुपमिता।'

रत्नावली के बिखरे हुए चंचल बाल खुल गए हैं, पलकों ने गिरना बंद कर दिया। भावातुर हृदय की धड़कने शांत हो गई। वह सत्य की साधना में लीन सिर्फ ध्यानास्थ है। उसने प्रिय के साकार भाव को समाप्त कर 'योगिनी' ('जागी योगिनी अरूप-लग्न') रूप धारण कर लिया है, जहाँ रूप पीछे छूट जाता है और अरूप से मन लग जाता है। उसके इस रूप की तुलना दूसरे किसी चीज से नहीं दी जा सकती। इसलिए कवि ने उसे 'निरुपमिता' कहा। निश्चित-रूप से स्त्री-जागरण का यह चित्र सम्पूर्ण आधुनिक काव्य में दुर्लभ है। यह एक सुखद विडम्बना है कि जिस पत्नी–प्रेम के मोह ने तुलसीदास को उनके कर्तव्य-पथ से विचलित कर दिया था, उसी पत्नी का तेजोदीप्त व्यक्तित्व उन्हें ऊर्ध्व दृष्टि प्रदान करता है। अपने विराट-दिव्य रूप में रत्नावली पति को प्रबोधित करती हुई कहती है-

'धिक! धाए तुम यों अनाहूत,
धो दिया श्रेष्ठ कुल-धर्म धूत
राम के नहीं, काम के सूत कहलाए
हो बिके जहाँ तुम बिना दाम,
वह नहीं और कुछ हाड़-चाम
कैसी शिक्षा, कैसे विराम पर आए ?'

यह 'अस्थि चर्ममय देह मम, तामें ऐसी प्रीति' का नया संस्करण है, कथा वही है। रत्नावली ने तुलसीदास से कहा कि तुम बिना आमंत्रण के दौड़े हुए ससुराल चले आए। ऐसे प्रेम (आसक्ति व मोह से ग्रसित) पर धिक्कार है। तुमने आपने आचरण से अपने श्रेष्ठ और पवित्र-कुल-धर्म को नष्ट कर दिया। कहाँ तुम्हें 'राम के रथ का सारथी' होना चाहिए था और तुम 'काम के रथ के सारथी' बन गए हो। रत्नावली के द्वारा कहे गए एक-एक शब्द बिजली की स्थिर चमक के समान थे- 'अपचल ध्वनि की चमकी चपला।' बिजली तो चमक-कर लुप्त हो जाती है, लेकिन रत्नावली का कथन 'बिजली की स्थिर कौंध' की तरह था। वह अबला इस समय एक साथ शक्ति, लक्ष्मी और सरस्वती का रूप प्रतीत होती है। रत्नावली के इस नये दिव्य-विराट रूप पर नन्दकिशोर नवल ने लिखा –"नारी का यह तेजस्वी मूर्ति रूप सम्पूर्ण छायावाद में कहीं नहीं मिलता। जैसे प्रेमचंद को स्वाधीन, स्वावलंबी और स्वाभिमानी नारियाँ पसंद थी, वैसे ही निराला को भी।'तुलसीदास' की रत्नावली के आगे 'तुमुल कोलाहल-कलह में हृदय की बात' वाली श्रद्धा की मूर्ति बहुत फीकी लगती है। मनु को नापसंद करते हुए भी वह उनके आगे हमेशा दब्बू बनी रही, जबकि रत्नावली तुलसीदास से पूरी बुद्धि और विवेक के साथ विस्मयजनक दृढ़ता और कठोरता से पेश आई। उसने जो कहा, वह अपनी सटीकता और बेधकता के कारण हिन्दी-क्षेत्र में प्रचलित हो चुका है ।"[14] यह पूरा प्रसंग कोरे देहवादियों पर तीखा व्यंग्य है। इस तरह की विराट कल्पना 'राम की शक्तिपूजा' में 'पर्वत में पार्वती की अवतारणा' द्वारा उद्भूत हुई है।

रत्नावली का यह कहना था कि तुलसीदास का वह संस्कार, जिसे थोड़े दिनों के लिए कामभाव ने आच्छादित कर लिया था, बहुत ही तीव्र शक्ति के साथ जग पड़ा। उसमें उनका काम-भाव शीघ्रता से नष्ट हो गया। अब उन्हें रत्नावली 'वामा' यानी मनोहारिणी स्त्री के रूप में नहीं, बल्कि अग्नि-प्रतिमा के रूप में दिखलाई पड़ी। अब उन्हें अपने चारों ओर ज्ञान का प्रकाश दिखलाई पड़ता है-

'देखा, शारदा नील-वसना
हैं सम्मुख स्वंय सृष्टि-रसना ,
फूटीतर अमृताक्षर-निर्झर ,
वह विश्व हंस है, चरण सुधर जिस पर श्री ।'

हमें यह ध्यान रखना होगा कि रत्नावली के प्रबोधन के केंद्र में केवल 'तुलसीदास' नहीं है बल्कि साहित्य और जीवन-संस्कृति की सम्पूर्ण परंपरा है। रामविलास जी के अनुसार- " रत्नावली में उनकी आसक्ति व्यक्तिगत कामुकता न होकर सामाजिक ह्रास का प्रतीक बन जाता है। रत्नावली के शब्दों में तुलसीदास को नहीं वरन साहित्य और संस्कृति की समस्त रीतिकालीन परंपरा को धिक्कारा गया है। उनके योगिनी रूप में मध्यकालीन नारी का नायिका-भेद वाला रूप जलकर भस्म हो गया।"[15] कामभाव के नष्ट होते ही तुलसीदास की दृष्टि 'सरस्वती' (दृष्टि से भारती से बंधकर, कवि उठता हुआ चला ऊपर') पर केन्द्रित हो गई, फिर तो उनका मन ऊपर उठने लगा, जैसे चित्रकूट में ऊपर उठा था। ऊपर केवल शून्य था। सारी द्वता और बंधन मिट गए, शेष रह गया केवल आनंद –' आनंद रहा, मिट गये द्वंद , बंधन सब।' यह उनकी मुक्ति है- जैसे 'कामायनी' में मनु को नटराज के लोक में पहुँचकर मिलती है –'चेतनता एक विलसती, आनंद अखंड घना था'। जिस प्रकार कली में सौरभ स्थित होता है, उसी प्रकार ज्ञान उनके चित्त में स्थिर हो गया। जीवनबोध असीमता की लय को छूने लगा। तुलसीदास का यह जागरण सम्पूर्ण जगत को प्रभावित करने वाला है। जागरण के प्रभात का यह चित्र देखिए, जो कवि की मौलिक कल्पना से उद्भूत है-

'जागो जागो आया प्रभात,
बीती वह, बीती अंध रात,
मुरता भर ज्योतिर्मय प्रपात पूर्वांचाल;
बांधों बांधों किसमें चेतन;
तेजस्वी, है तमजि जीवन ,
आती भारत की ज्योति धन महिमा बल।'

ऐसा प्रतीत होता है जैसे कि भारत का सांस्कृतिक जागरण इन शब्दों में समाहित हो गया है। कवि कहता है कि जगो, काली रात बीती, अब सुबह हो गई। उदयाचल से ज्योति का झरना झर रहा है। अंधकार पर विजयप्राप्त करने वाले, तुम तेजस्वी हो, इन चेतना की किरणों को समेट लो। भारत की महिमा और बल से युक्त ज्योति का अवतरण हो रहा है। तुलसीदास का यह जागरण उनके लिए हर्ष का विषय था, जो भारत में भारतीय संस्कृति पर इस्लामिक संस्कृति के प्रसार से दग्ध होकर निश्चल पड़े थे-

'सुना उर ऋषियों का ऊना
सुनता स्वर, हो हर्षित, द्वना,
आसूर भावों से जो भूना, था निश्चय।'

क्योंकि तुलसीदास की यह जागृत अवस्था उन्हें पुन: सांस्कृतिक-संघर्ष के लिए प्रेरित करती है और इस बार विजय सुनिश्चित है। जड़ और चेतन के संघर्ष में चेतन की विजय को कवि ने पूरे आत्मविश्वास से अंकित किया है-

'होगा फिर से दुर्धर्ष समर

जड़ से चेतन का निशिवासर,
भारती इधर, है उधर सकल
जड़ जीवन के संचित कौशल
जय इधर, ईश, हैं उधर सबल माया- कर।'

एक तरफ 'देश काल के शर से विंधा' चेतित कवि तुलसीदास और उनकी सहायक सरस्वती तथा दूसरी तरफ सम्पूर्ण भौतिक जीवन के कौशल यानी माया। ईश (हिन्दू-संस्कृति) और माया (मुस्लिम संस्कृति) की इस लड़ाई में विजय निश्चय ही परमात्मा की होनी है। यह विजय जातीय जीवन में आए विखराव को दूर कर उसे पूर्णता प्रदान करेगी और उसकी खोयी हुई पहचान वापस दिलाएगी। निराला ने तुलसीदास के माध्यम से 'कवि कर्म की चरम परिणति' को यहाँ प्रस्तुत किया है –

'हो रहे आज जो खिन्न खिन्न
छूट-छूटकर दल से भिन्न-भिन्न
वह अकल–कला, गह सकल छिन्न,
जोड़ेगी, रविकर ज्यों बिन्दु-बिन्दु जीवन
संचित करता है वर्णन,
लहरा भव- पादप, भर्षण- मन भोड़ेगी।'

कवि कहता है कि – 'आज समाज में जो बिखराव आ गया है, तुलसीदास की पूर्णकला उस बिखराव को दूर करेगी, समाज के विभिन्न खंडों को जोड़कर उसे पूर्णता प्रदान करेगी। जैसे सूर्य की किरणें समुद्र से बूंद-बूंद जल संचित कर वर्षा कराती हैं, वैसे ही तुलसीदास की कला भव-पादप यानी समाज को हरा-भरा बना देगी। लोग अन्याय के प्रति सहिष्णु हो गए हैं, उधर से उनका मन फेरकर उनमें प्रतिरोध की क्षमता उत्पन्न करेगी'।

रत्नावली से धिक्कार के बाद तुलसीदास रत्नावली से अपने जीवन की अंतिम बात कहते हैं-

'जगमग जीवन का अंव्य भाष
जो दिया मुझे तुमने प्रकाश ,
अब रहा नहीं लेशावकाश रहने का
मेरा उससे गृह के भीतर ,
देखुंगा नहीं कभी फिरकर,
लेता मैं, जो वर जीवन-भर बहने का'।

अर्थात जो प्रकाश मैंने तुमसे पाया है, उसके बाद अब गृहस्थ-जीवन में टिके रहने का लेश-मात्र भी अवकाश नहीं। मैं अब घर छोड़ने और जीवन- पर्यंत सन्यासी की तरह भ्रमण करते हुए जीवन व्यतीत करने का व्रत लेता हूँ। अब मैं इस रास्ते कभी न लौटूँगा। यह कहकर वे दृढ़ संकल्प और स्थिर चित्त के साथ, कमरे से बाहर आ गए और पाया कि रत्नवाली में जिस सरस्वती की छवि को उन्होनें देखा था, वह सम्पूर्ण सृष्टि में व्याप्त है। अंत में वे कहते हैं-

'चल मंद चरण आये बाहर,
उर में परिचित वह मूर्ति सुधर
जागी विश्वाश्रय महिमाधर, फिर देखा –
संकुचित, खोलती श्वेत पटल
बदली, कमला तिरती सुख-जलष
प्राची-दिगंत-उर में पुष्कल रवि-रेखा।'

भारतीय नभमण्डल में छाया सांस्कृतिक अंधकार नष्ट हुआ, अब पूर्व दिशा में भारतीय संस्कृति का अरुणोदय हो रहा है। 'कमला' विजय-श्री का संकेत है।

यह कविता भारतीय संस्कृति पर इस्लामिक संस्कृति के विजय के साथ शुरू होती है और इस्लामिक संस्कृति पर भारतीय संस्कृति की विजय और उसकी पुन:प्रतिष्ठा के साथ खत्म। इस कविता में निराला ने लोकजीवन में प्रचलित तुलसीदास के जीवन के विविध प्रसंगों को लेते हुए, अपनी विराट कल्पना और मौलिक प्रतिभा के बलबूते इस सांस्कृतिक विजय को भारतीय-जीवन के सत्य के रूप में देखने का प्रयास किया है। मध्यकाल में जिस कार्य को (जातीय जीवन को उदात्त सांस्कृतिक जीवन-मूल्यों के द्वारा एक सूत्र में बांधने का सफल प्रयास) तुलसीदास ने अपनी रचना 'रामचरितमानस' के माध्यम से करने का प्रयास किया , वही प्रयास आधुनिक युग में निराला अपनी रचना 'तुलसीदास' के माध्यम से करते हैं। न केवल 'तुलसीदास' बल्कि उनकी कविता 'शिवाजी का पत्र' और 'राम की शक्तिपूजा' में भी इसी सांस्कृतिक क्षय की चिंता और उसके पुर्नउद्धार और प्रतिष्ठा का प्रयास दिखाई पड़ता है। इस संदर्भ में दूधनाथ सिंह का कहना है कि –" जिस सांस्कृतिक क्षय की चिंता निराला को 'शिवाजी के पत्र' में सालती है, वही 'सांस्कृतिक अंधकार' के रूप में 'तुलसीदास' में भी व्यक्त हुई है। 'शक्तिपूजा' में 'दुर्गम-पर्वत पर नैशांधकार' के रूप में वही चिंता (व्यक्तिगत कवि-जीवन से भी उसका घनिष्ट संबंध है) उतरती है। 'शिवाजी का पत्र' में जिसके घातक आक्रमण को निराला ने- 'मोगल-दल- विगलित-बल /हो रहे हैं राजपूत /बाबर के वंश की / देखो राज-लक्ष्मी / प्रखर से प्रखरतर दीखती' कहकर व्यक्त किया है, उसे ही 'तुलसीदास' कविता में – मोगल-दल-बल के जलद-यान / नीचे प्लावन की प्रलय-धार, ध्वनि हर-हर'। और 'शक्तिपूजा' में - 'राक्षस पदतल पृथ्वी टलमल' में भी आसुरी संस्कृति के प्रसार की झंकार है। शिवाजी संस्कृति के वैसे ही रक्षक-प्रतीत होते हैं, जैसे 'तुलसीदास' में 'तुलसी' और 'राम की शक्तिपूजा' में 'राम'। लेकिन इन तीनों चरित्रों के भीतर से निराला स्वयं अपने कवित्व और कवि-जीवन द्वारा संस्कृति की रक्षा का बीड़ा उठाते हुए लगते हैं। सांस्कृतिक अंधेरे के भीतर से जैसे शिवाजी 'प्राची के भाल पर स्वर्ण-सूर्योदय' देखने की परिकल्पना करते हैं, उसकी तरह 'तुलसीदास' में तुलसी 'प्राची दिगंत-उर में पुष्कल रवि-रेखा' देखते हैं और 'राम की शक्तिपूजा' में ' होगी जय, होगी, हे पुरुषोत्तम नवीन' कहकर उसी सांस्कृतिक सूर्योदय की कल्पना करते हैं।"[16] निश्चित रूप से निराला के साहित्यिक मूल्यांकन में हम उनके इस सांस्कृतिक-विजन को देखना नहीं भूल सकते, जो उनकी रचनाओं में कहीं न कहीं, किसी न किसी रूप में विद्यमान है।

'तुलसीदास' कविता निराला के निर्माण-कौशल का उत्कृष्ट उदाहरण है। यह एक ऐसा काव्य-प्रयास है, जिसकी पुनरावृत्ति संभव नहीं। सौ बंद की इस लंबी प्रबंधात्मक कविता में 'स्थापत्य की पूर्णता' और 'सुगठित काव्य शिल्प' कवि-प्रतिभा के अतिरिक्त उसके अथक प्रयास (जैसे कोई मजदूर छह घंटे भट्टी के पास तपकर निकला हो) का परिणाम है। नवल जी के

अनुसार – " निराला ऊटपटाँग लिखते हैं, उन्हें छंद शास्त्र का ज्ञान नहीं है, वह बंगला कविताओं से भाव उधार लेकर रचना करते हैं – यह प्रचार तो उनके कवि जीवन के आरंभ में ही शुरू हो गया था!"[17] इन सारे आरोपों का मुंहतोड़ जवाब देती है, उनकी यह रचना। लेकिन इसके बावजूद उनकी इस रचना को कभी 'अपेक्षाकृत अधिक पांडित्य और परिश्रम का परिणाम' मानकर तो कभी भाषा की क्लिष्टता, अर्थ की दुरूहता और इस्लाम का विरोध देखकर किनारे कर दिया जाता है। इसमें कोई दो राय नहीं की 'तुलसीदास' निराला की एक कठिन रचना है, जो अपने पाठकों से थोड़े-से अधिक परिश्रम और साहित्यिक रुचि के परिष्कार की मांग करती है। इस संदर्भ में डॉ. रामविलास शर्मा का कहना है कि – " निराला की कविता सहज सुबोध नहीं है। इसका कारण भाषा की क्लिष्टता नहीं है, भाव की गहराई, व्यंजना का बाँकपन, शब्दों की ध्वनि और छंद की लय का अनूठापन भी इसका कारण है। थोड़ा परिश्रम करने पर जैसे मिल्टन के उदात्त काव्य का रस मिलने पर उसके आगे अन्य कवियों की रचनाएँ फीकी लगती हैं, वैसे ही निराला-काव्य का एक बार रस मिलने पर दूसरे कवि कम अच्छे लगेंगे। काव्य की परख जितनी निखरेगी उतनी ही दिन-प्रतिदिन निराला का काव्य आपको अधिक रुचेगा और क्रमश: आपका जीवन-साथी बन जाएगा।"[18]

जहां तक इस कविता में इस्लाम के विरोध की बात है; तो हमें यह ध्यान रखना होगा कि कवि ने जिस मध्यकालीन ऐतिहासिक पृष्ठभूमि को इस कविता का कथानक बनाया है, वह तात्कालीन जीवन का सत्य है। हम जानबूझकर उस सत्य से मुँह नहीं मोड़ सकते। यह कौन नहीं जनता कि मुगल भारत में किस मानसिकता से आए थे। जाहिर सी बात है हाथों में फूलों की माला लिए शांति का संदेश देने तो नहीं आए थे, और न ही उत्कृष्ट कला-साहित्य और संस्कृति का पाठ पढ़ाने। उनका मुख्य उद्देश्य भारत-भूमि पर एकछत्र राज और अपनी सभ्यता और संस्कृति का प्रसार करना था। हिन्दू-मुस्लिम भाई-भाई, गंगा-जमुनी संस्कृति या पारस्परिक प्रेम व सौहाद्र बनाए रखना आज के भारतीय जीवन की परिपाटी है, तब की नहीं थी। तब वह हमारे लिए विदेशी आक्रांता ही थे। इसलिए निराला के दृष्टिकोण को हिंदुत्ववादी या सांप्रदायिक समझना बहुत बड़ी भूल होगी। बल्कि यह एक साहसिक कवि-कर्म है, जिसमें किसी भी प्रकार की लीपापोती करने या उस सत्य से बच निकलने की जरूरत नहीं है। इस संदर्भ में नन्द किशोर नवल ने बड़ी ही सार्थक टिप्पणी की है- " निराला का दृष्टिकोण न तो हिंदुत्ववादी है, न सांप्रदायिक, इसलिए उनके इस्लाम विरोध या वेदान्त-चर्चा से बचकर निकलने की आवश्यकता नहीं। अपने संप्रदायमुक्त दृष्टिकोण का परिचय उन्होनें 'महाराज शिवाजी का पत्र' नामक अपनी कविता में ही दे दिया था, जो कि मिर्जा जयसिंह के नाम लिखे गए शिवाजी के कथित छंदोबद्ध फारसी पत्र का हिन्दी रूपांतर है। मूलपत्र में शिवाजी कहते हैं – 'बड़ा खेद तो यह है कि मुसलमानों का खून पीने के अतिरिक्त किसी अन्य कार्य के निमित्त मेरी तलवार को मियान से निकलना पड़े।' इसमें निराला को तीव्र सांप्रदायिक घृणा की अभिव्यक्ति दिखलाई पड़ी, इसलिए अपने रूपांतर में उन्होनें इस अंश को छोड़ दिया और उसकी जगह अंग्रेजी-साम्राज्यवाद का विरोध कर कविता को एक सामयिक संदर्भ देने का प्रयास किया। उनका दृष्टिकोण वही है, जो वस्तुत: तुलसीदास का था, या फिर विवेकानंद का- मानववादी।"[19]

इस प्रकार निराला की यह रचना हमारे सम्मुख है, जिसमें कवि-कर्म की उदात्त रूप-रेखा को प्रस्तुत कर यह बताने का प्रयास किया गया है कि कोरे कला-वैभव और तुक-बंदी से ऊपर उठकर कवि को अपनी सर्जना में विश्व-जीवन की चेतना को मुखरित करना है।

संदर्भ:

1. शर्मा, रामविलास, निराला की साहित्य-साधना, भाग दो, राजकमल प्रकाशन, संस्करण -2016, पृष्ठ सं. - 146, 166
2. चतुर्वेदी, पं. ज्वालाप्रसाद संपादक, रामचरितमानस, मानस पारायण प्रचार मण्डल, बंबई-4, पृष्ठ सं. -14
3. सिंह, दूधनाथ, निराला:आत्महंता आस्था, लोकभरती प्रकाशन, संस्करण:2004, पृष्ठ सं. - 124-25
4. नवल, नन्दकिशोर संपादक, निराला रचनावली, भाग-एक, राजकमल प्रकाशन, संस्करण: 2014, पृष्ठ सं. – 28
5. नवल, नन्दकिशोर, निराला: कृति से साक्षात्कार, सारांश प्रकाशन, संस्करण: 1997, पृष्ठ सं.- 102
6. शर्मा, रामविलास, निराला की साहित्य-साधना, भाग दो, राजकमल प्रकाशन, संस्करण -2016, पृष्ठ सं. – 535।
7. सिंह, दूधनाथ, निराला:आत्महंता आस्था, लोकभरती प्रकाशन, संस्करण:2004, पृष्ठ सं. – 128
8. नवल, नन्दकिशोर, निराला: कृति से साक्षात्कार, सारांश प्रकाशन, संस्करण: 1997, पृष्ठ सं.- 109
9. शर्मा, रामविलास, निराला, राधाकृष्ण प्रकाशन, संस्करण: 2018, पृष्ठ सं.- 93
10. सिंह, दूधनाथ, निराला:आत्महंता आस्था, लोकभरती प्रकाशन, संस्करण:2004, पृष्ठ सं. – 129
11. नवल, नन्दकिशोर, निराला: कृति से साक्षात्कार, सारांश प्रकाशन, संस्करण: 1997, पृष्ठ सं.- 116
12. खरे, डॉ. रेखा, निराला की कविताएं और काव्य भाषा, लोकभरती प्रकाशन, संस्करण : 2015 , पृष्ठ सं.- 159
13. नवल, नन्दकिशोर, निराला: कृति से साक्षात्कार, सारांश प्रकाशन, संस्करण: 1997, पृष्ठ सं.- 131
14. वही, पृष्ठ सं.- 132
15. शर्मा, रामविलास, निराला, राधाकृष्ण प्रकाशन, संस्करण: 2018, पृष्ठ सं.- 93
16. सिंह, दूधनाथ, निराला:आत्महंता आस्था, लोकभरती प्रकाशन, संस्करण:2004, पृष्ठ सं. – 102-03
17. नवल, नन्दकिशोर, निराला-काव्य की छवियाँ, राजकमल प्रकाशन, संस्करण: 2012, पृष्ठ सं. – 11-12
18. शर्मा, रामविलास, निराला, राधाकृष्ण प्रकाशन, संस्करण: 2018, पृष्ठ सं.- 161-62
19. नवल, नन्दकिशोर, निराला: कृति से साक्षात्कार, सारांश प्रकाशन, संस्करण: 1997, पृष्ठ सं.- 139-40